Subject :- Sociology Date :- 22/05/2020
Class :- D-II (H) Paper :- 4th (1)
Topic :- सामाजिक अनुसंधान/शोध के चरण
By :- Dr. Shyamanand Choudhary
Guest Teacher Marwari College, Darbhanga

सामाजिक अनुसंधान के चरण Online Study Material No:- (85)

सामाजिक शोध में प्रारंभ से अंत तक सुनिश्चित ढंग से कार्य किया जाता है। इसमें एक निश्चित क्रम से एक चरण से दूसरे चरण में और दूसरे चरण से तीसरे चरण में अर्थात् क्रमानुसार विभिन्न चरणों से होता हुआ आगे बढ़ा जाता है। सामाजिक शोध के चरणों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों में कुछ मतभेद अवश्य है, परन्तु मूलतः इसके चरण एक ही है। इतना अवश्य है कि शोधकर्ता अपने अध्ययन में किन चरणों का उपयोग करेगा और किस क्रम में करेगा, यह शोध की प्रकृति पर निर्भर करता है।

सामाजिक अनुसंधान के चरण

1. समस्या (विषय) का चुनाव (Selection of the problem) → सामाजिक शोध का यह प्रथम चरण अत्यंत महत्वपूर्ण है। कोई भी अध्ययन कार्य उस समय तक प्रारंभ नहीं किया जा सकता जब तक कि विषय या समस्या का चुनाव नहीं कर लिया जाता। मस्तिष्क में आया हुआ प्रत्येक विचार या कल्पना शोध का विषय नहीं बन सकता। शोधहेतु विषय का चुनाव करते समय यह देखना होगा कि विषय के सम्बन्ध में आवश्यक तथ्य उपलब्ध हो सकेंगे या नहीं, किसी वैज्ञानिक प्रविधि को काम में लेते हुये इन तथ्यों को संकलित किया जा सकेगा या नहीं, शोध-कार्य साधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुये समय पर पूरा किया जा सकेगा या नहीं तथा विषय की सामान्यीकरणों व नियमों के प्रतिपादन की दृष्टि से उपयोगिता है अथवा नहीं। विषय के दोषपूर्ण चुनाव से श्रम व साधनों का अपव्यय होता है।
2. सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन (Review of pertinent Literature) → विषय का चुनाव कर लेने के पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण चरण सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन आता है। यदि अध्ययन-विषय से सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन किये बिना ही शोध-कार्य प्रारंभ कर दिया जाता है तो इससे सम्पूर्ण शोध प्रक्रिया के ही दोषपूर्ण होने की संभावना रहती है। अतः आवश्यक है कि प्रारंभ में ही शोध से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन कर लिया जाय। सम्बन्धित साहित्य में प्रपत्र, लेख, पत्र, पुस्तकें, प्रतिवेदन, विषय से सम्बन्धित शोध-ग्रन्थ आदि आते हैं। इस प्रकार के साहित्य के अध्ययन से शोधकर्ता का कार्य कुछ सरल हो जाता है, उसे अध्ययन की विभिन्न प्रविधियों

Scanned with CamScanner

का ज्ञान हो जाता है, शोध-कार्य में आने वाली कठिनाईयों का पता चल जाता है। साथ ही महत्वपूर्ण अवधारणाओं की जानकारी मिल जाती है, किये हुये शोध-कार्य को पुनः दोहराने की भूल से छुटकारा मिल जाता है तथा शोध-कार्य की सही रूपरेखा तैयार करने में मदद मिलती है।

3. इकाईयों का निर्धारण (Determination of Units) → सामाजिक शोध का एक अन्य प्रमुख चरण शोध से सम्बन्धित इकाईयों का निर्धारण और उन इकाईयों को स्पष्टतः परिभाषित करना है। इकाईयों का निर्धारण करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए कि इकाईयाँ अध्ययन के उद्देश्य से सम्बन्धित हों और साथ ही सम्पूर्ण समग्र से एकरूपता रखने वाली हों। इकाईयों का पूर्णतः स्पष्ट और सुपरिभाषित होना आवश्यक है। अध्ययन की इकाईयाँ ऐसी हो सकती हैं जो अत्यंत सरल मालूम पड़े, जैसे - निर्धन, कृषक, श्रमिक, मकान, बेकारी, शिक्षित, शहरी, ग्रामीण आदि। अध्ययन के लिए इनमें से जिस किसी इकाई का उपयोग किया जाय, उसको स्पष्ट रूप से परिभाषित करना आवश्यक है। अन्यथा अलग-अलग शोधकर्ता और सूचनादाता इनका भिन्न-भिन्न अर्थ लगाकर इन्हें अलग-अलग रूपों में समझेंगे। परिणामस्वरूप सूचनादाता ऐसी सूचनाएँ देंगे जो शोध-कार्य में सहायक होने की बजाय बाधक ही होंगी। इससे शोध-कार्य की वस्तुनिष्ठता (objectivity) समाप्त हो जाएगी।

4. प्राकल्पना का निर्माण (Formulation of Hypothesis) → प्राकल्पना एक ऐसा मान्य निष्कर्ष है जिसे सही नहीं मान लिया जाता है। वास्तविक तथ्यों के आधार पर उसका पुष्टिकरण किया जाता है। प्राकल्पना शोधकर्ता के कार्य को दिशा प्रदान करती है और उसे यह बताती है कि क्या ग्रहण करना है और क्या छोड़ देना है? इससे शोध का कार्य-क्षेत्र निर्धारित होता है, आगे का मार्ग व दिशा स्पष्ट होते हैं। तथ्यों के आधार पर प्राकल्पना सत्य भी प्रमाणित हो सकती है और असत्य भी। परन्तु इतना निश्चित है कि इन दोनों ही स्थितियों में ज्ञान की वृद्धि होती है। प्राकल्पना शोधकर्ता के कार्य को सरल बना देती है, दिशाहीन अध्ययन पर अंकुश लगाती है, ऐसे तथ्यों को एकत्रित करने पर रोक लगाती है जो शोध-कार्य की दृष्टि से आवश्यक नहीं है।

5. अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण (Determination of Scope of Study) → अध्ययन क्षेत्र या शोध-क्षेत्र का निर्धारण मूलतः शोध विषय की प्रकृति पर निर्भर करता है। शोधकर्ता को अपने अध्ययन-क्षेत्र का स्पष्टतः निर्धारण कर लेना चाहिए ताकि तथ्यों का वस्तुनिष्ठ ढंग से संकलन

Scanned with CamScanner

किया जा सके। शोध-क्षेत्र के निर्धारण का तात्पर्य यही है कि शोध-कार्य प्रारंभ करने से पूर्व शोधकर्ता को अपने अध्ययन-क्षेत्र की सीमाओं-भौगोलिक, जनसंख्यात्मक तथा अन्य आधार पर निर्मित, का निर्धारण कर लेना चाहिए। ऐसा करने से क्षेत्रीय-कार्य (Field Work) में लगे हुये अन्वेषकों का ध्यान एवं प्रयत्न उस क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रह सकेंगे। अध्ययन क्षेत्र न तो बड़ा और न ही छोटा होना चाहिए। ज्यादा छोटे क्षेत्र के अध्ययन के आधार पर उपयोगी निष्कर्ष निकालना कठिन होता है तथा ज्यादा बड़ा होने के आधार पर शोध-कार्य निश्चित समय पर पूरा करना मुश्किल होता है।

6. सूचनादाताओं या उत्तरदाताओं का चुनाव (Selection of respondents)→ शोधकर्ता के लिए अध्ययन-क्षेत्र की सभी इकाईयों से सम्पर्क कर तथ्यों को एकत्रित करना कठिन होता है। फिर भी यदि अध्ययन-क्षेत्र काफी सीमित हो तो क्षेत्र की प्रत्येक इकाई से सूचनाएँ एकत्र की जाती हैं। इसे संगणना विधि के नाम से पुकारते हैं। परन्तु इस विधि द्वारा अध्ययन में काफी श्रम, समय, साधन एवं धन लगता है। अतः अध्ययन के लिए निदर्शन-विधि या प्रतिचयन विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि द्वारा समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाली कुछ इकाईयों को चुन लिया जाता है। समग्र में कुछ इकाईयों का चुनाव शोधकर्ता मनमाने ढंग से करता है ताकि सूचनादाताओं या उत्तरदाताओं के चुनाव में किसी प्रकार की अभिनति या पक्षपात नहीं आ पाये। यहाँ यह भी निर्धारित करना होता है कि समग्र में से कितनी इकाईयों का चुनाव निदर्शन के रूप में किया जाएगा। मान्यता यह है कि इस निदर्शन के रूप में चुने गये लोगों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जायेंगे, वे सम्पूर्ण समग्र पर लागू होंगे, समग्र का प्रतिनिधित्व करेंगे। निदर्शन के रूप में सामान्यतः 10%, 20% या अध्ययन-क्षेत्र में सीमित होने पर इससे भी कुछ अधिक इकाईयों का चुनाव किया जा सकता है।

7. सूचना के स्रोतों एवं अध्ययन के उपकरणों व प्रविधियों का निर्धारण (Determination of Sources of Data & Tools & Techniques of Study)→ प्राकल्पना की जाँच करने एवं सत्यता का पता लगाने के लिए तथ्य या सूचनाएँ संकलित करना आवश्यक होता है। इसके लिए शोधकर्ता को यह पता लगाना पड़ता है कि सूचना-प्राप्ति के विश्वसनीय स्रोत कौन से हैं, प्राथमिक स्रोत तथा द्वैतीयक स्रोत। जो सूचनाएँ अध्ययनकर्ता क्षेत्रीय-कार्य द्वारा प्रथम बार प्राप्त करता है, वे सभी प्राथमिक सूचनाएँ कहलाती हैं। द्वैतीयक स्रोत के अन्तर्गत शोध ग्रन्थ, पुस्तकें, पाण्डुलिपियाँ, जनगणना रिपोर्ट, अभिलेख, गजेटियर, पत्र-पत्रिकाएँ आदि सूचना के द्वैतीयक स्रोत ही हैं।

सूचना-प्राप्ति के स्रोतों का पता लगा लेने के बाद शोध-समस्या

Oxford

Scanned with CamScanner

सूचनादाताओं एवं क्षेत्र की प्रकृति को ध्यान में रखते हुये ऐसे उपकरणों व प्रविधियों का चुनाव करना होगा जिनकी सहायता से प्रमाणिक एवं वस्तुनिष्ठ तथ्य एकत्र किये जा सके। उदाहरणार्थ- यदि किसी शोध में सूचना प्राप्त करने हेतु अनुसूची का प्रयोग किया जाता है तो न केवल इसका ठीक से निर्माण करना बल्कि यह बताना भी आवश्यक है कि इसका उपयोग किस प्रकार से किया जाएगा। यही बात अन्य प्रविधियों जैसे अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली आदि के सम्बन्ध में भी सही है।

8. उपकरणों एवं प्रविधियों का पूर्व-परीक्षण तथा अग्रगामी अध्ययन → वास्तविक शोध कार्य प्रारंभ करने के पूर्व शोधकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि शोध हेतु चुने गये उपकरणों एवं प्रविधियों की उन्हें छोटे पैमाने पर लागू करके जाँच कर ली जाय, उनकी कमियों या दोषों का पता लगा लिया जाय ताकि प्रारंभ में ही उन्हें दूर किया जा सके। इसे ही पूर्व-परीक्षण या पद्धतिशास्त्रीय पूर्वाभ्यास कहते हैं। पूर्व-परीक्षण का इस दृष्टि से विशेष महत्व है कि इससे अध्ययन में काम में लिए जाने वाले उपकरणों, प्रविधियों एवं अन्वेषकों की जाँच हो जाती है तथा इसमें आवश्यकतानुसार संशोधन कर कमियों को शोध के प्रारंभिक स्तर पर ही दूर किया जाता है।

अध्ययन के उपकरणों की जाँच हेतु पूर्व-परीक्षण किया जाता है। लेकिन मूल शोध प्रारंभ करने के पहले सम्पूर्ण शोध-कार्य का छोटे पैमाने पर निरीक्षण किया जाता है। इसमें यह पता लगाया जाता है कि चुना गया निदर्शन पर्याप्त है या नहीं, निदर्शन-विधि उपयुक्त है या नहीं, अन्वेषकों में आवश्यक कार्यक्षमता है या नहीं। वैज्ञानिक अध्ययन हेतु इन सब बातों का पता लगाना आवश्यक होता है। इसे हेतु छोटे पैमाने पर या लघु स्तर पर अनुसंधान किया जाता है। इसे पूर्वगामी या अग्रगामी अध्ययन (Pilot study) कहते हैं। यह मुख्य शोध का लघु स्तरीय प्रतिरूप कहलाता है।

9. तथ्यों का अवलोकन व संकलन (observation & collection of Data) → शोध-कार्य की सम्पूर्ण योजना के तैयार हो जाने के बाद क्षेत्रीय-कार्य प्रारंभ होता है। अब तथ्य संकलन हेतु अवलोकन तथा अध्ययन के अन्य उपकरणों एवं प्रविधियों का सहारा लिया जाता है। शोध-प्रक्रिया के इस स्तर पर तथ्य संकलन हेतु सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित किया जाता है, अन्वेषकों पर पूरा ध्यान रखा जाता है तथा अप्रासंगिक या असंगत तथ्यों की फिर से जाँच की जाती है।

10. तथ्यों का सम्पादन, संकेतन, वर्गीकरण एवं सारणीयन → तथ्यों के संकलन के बाद उनके विश्लेषण का कार्य प्रारंभ होता है। एक कुशल शोधकर्ता एकत्रित तथ्यों को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वे सजीव मालूम पड़ने

Scanned with CamScanner

लगते हैं, स्वयं बोलने लगते हैं। सर्वप्रथम शोधकर्ता तथ्यों का सम्पादन करता है। विभिन्न प्रविधियों द्वारा एकत्रित तथ्यों की जाँच की जाती है, कमियों को दूर किया जाता है, असंगति दूर कर तथ्यों को स्पष्टता प्रदान की जाती है। इस स्तर पर अनावश्यक सूचनाओं को निकाल दिया जाता है तथा शेष सूचनाओं को क्रमबद्ध रूप में जमा लिया जाता है। प्रत्युत्तरों को अर्थपूर्ण श्रेणियों में बाँटने की प्रक्रिया को ही संकेतन के नाम से पुकारते हैं। यहाँ लोगों से प्राप्त व्यक्तिगत उत्तरों को कुछ समूहों में रखा जाता है, विभिन्न उत्तरों को संकेतों, प्रतीकों व संख्याओं की सहायता से व्यवस्थित बनाया जाता है। इसके बाद शोध के उद्देश्यों के आधार पर तथ्यों को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है। तथ्यों का वर्गों में विभाजन एवं वर्ग-निर्माण की प्रक्रिया ही वर्गीकरण के नाम से जानी जाती है।

सारणीयन में वर्गीकृत तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान करने हेतु संख्यात्मक सारणियों में रखा जाता है। ऐसा करने से वर्गीकृत तथ्य अधिक अर्थपूर्ण एवं स्पष्ट हो जाते हैं। ऐसे सूक्ष्म, स्पष्ट एवं तुलना योग्य तथ्यों के आधार पर ही वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना एवं नियमों का प्रतिपादन करना संभव होता है। यहाँ हमें इतना अवश्य ध्यान में रखना है कि वैज्ञानिक निष्कर्षों की प्राप्ति हेतु सारणीयन के कार्य को काफी सावधानीपूर्वक सम्पन्न करना नितान्त आवश्यक है।

11. तथ्यों का विश्लेषण व विवेचन (Analysis & Interpretation of Data) → इस स्तर पर विभिन्न प्रविधियों की सहायता से संकलित तथ्यों का विश्लेषण एवं विवेचन किया जाता है। यहाँ एकत्रित किये गये तथ्यों का अर्थ निकालने और प्राक्कल्पना की सत्यता-असत्यता का पता लगाने का प्रयत्न किया जाता है। तथ्यों, घटनाओं एवं विभिन्न दशाओं के बीच सह-सम्बन्ध ज्ञात किया एवं कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगाया जाता है। इस बात की विवेचना की जाती है कि किसी विशेष दशा, परिणाम अथवा घटना के लिए कौन से कारक उत्तरदायी हैं? इससे वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालने में मदद मिलती है।

12. सामान्यीकरण एवं नियमों का प्रतिपादन (Generalisations & Formulation of Laws) → शोध का यह अन्तिम चरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है यहाँ वैज्ञानिक निष्कर्षों पर पहुँचकर नियमों व सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। तथ्यों के विश्लेषण एवं विवेचन के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाले जाते हैं जो अति संक्षिप्त होते

Scanned with CamScanner

है। शोधकर्ता इन निष्कर्षों के आधार पर ही नियमों का प्रतिपादन करता है।

यहाँ यह बात बता देना भी आवश्यक है कि शोधकर्ता शोध के अन्तिम चरण के रूप में प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करता है। इस प्रतिवेदन के प्रथम भाग में शोध हेतु अपनायी गयी अध्ययन पद्धतियों का उल्लेख किया और अवधारणाओं को स्पष्टत: समझाया जाता है। दूसरे भाग में अध्ययन - विषय से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों को प्रस्तुत किया जाता और तथ्यों के बीच पाए जाने वाले कारणात्मक सम्बन्ध का उल्लेख किया जाता है। तीसरे भाग में सामान्य निष्कर्ष निकाले और नियमों का प्रतिपादन किया जाता है। इसे ही सामान्यीकरण या सैद्धान्तिकरण कहते हैं।

S.N. choudhary
Marwari college
L.N.M.U